पाप की सजा भारी

प्रवचनकार और लेखक - प. पू. मुनिराज श्री अरुणविजयजी महाराज

चातुर्मासिक २० रविवारीय - सचित्र जाहीर व्याख्यानमाला

श्री महावीर जैन शिक्षण शिविर

आयोजक - श्री जैन श्वे. मू. त. संघ, उदयपुर

विषय → "क्रोध कषाय को कैसे जीतें ?"

वि. सं. २०४१ श्रावण विद-२ *नौंवा प्रवचन-९ *रविवार ता. 1-9-85

* नौंवा प्रवचन—→ छट्ठा पापस्थानक—→ "क्रोध"

* विषय→'क्रोध कषाय को कैसे जीतें ?'

परमपूज्यपाद परमनाथ परमार्हन् चरम तीर्थंकर श्रमरण भगवान महावीरस्वामी के चरण कमल में शतश: नमस्कार पूर्वक……… ….

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छन्तो हियमप्पणो ।।

—अपनी आत्मा के हित की इच्छा रखने वाले मनुष्य को पाप को बढाने वाले क्रोध–मान माया, और लोभ इन चारों दोषों का त्याग करना चाहिए ।

—आत्म गुणों का विकार- कषाय→

अनादि–अनन्त चराचर इस विश्व में मूलभूत द्रव्य दो ही है ।–एक–जीव दूसरा अजीव । जीव यह ज्ञान–दर्शनादि गुणवान चेतन द्रव्य है । जबकि अजीव ज्ञान–दर्शनादि रहित वर्ण–गंध–रस–स्पर्शात्मक जड द्रव्य है । स्वयं ज्ञानवान् आत्मा के मुख्य आठ गुणों में तीसरा गुण है "अनन्त चारित्र" "या यथाख्यात स्वरूप" अर्थात् जैसा अपना स्वरूप है, जैसा शुद्ध कहा गया है उसी स्वरूप को यथाख्यात कहा । उसे ही अनन्त चारित्र गुण भी कहते हैं ।

संसारी अवस्था में अनादि राग–द्वेष के कारण आत्मा मलीन ही है । जिस तरह सोना प्रथम अवस्था में खान में

से ही मलीन है मिट्टि के साथ मिला हुआ है ठीक उसी तरह आत्मा भी निगोदरूपी खान में प्राथमिक अवस्था से ही राग-द्वेष ग्रस्त कर्ममल से मलीन ही है। अनन्त चारित्र गुण पर कर्ममल का आवरण आने से गुण की प्रकृति दब गई और विकृति सामने आ गई। जिस तरह दूध की प्रकृति क्या थी और उसमें खटाई मिल जाने के कारण फटने से विकृति निर्माण होती है अब फटे हुए दूध के गुण धर्म बदल गए ! उसी तरह आत्मा रूपी शुद्ध-स्वच्छ दूध में राग-द्वेष की खटाई मिलने से आत्मारूपी दूध फट गया, मलीन हो गया ! कर्ममल संयुक्त आत्मा अनादि काल से कर्म से बंधा हुआ आज भी अशुद्ध द्रव्य है।

तीसरे अनन्त चारित्र-यथाख्यात स्वरूप के गुण पर आए हुए कर्म के आवरण का नाम है "मोहनीय कर्म"। जो मोह-ममत्व उत्पन्न करता है। यही मोह राग भाव है। जिस तरह मदिरा-शराब पिया हुआ मनुष्य सच्चा ज्ञान भूलता है, विवेक भूलता है और नशे में कुछ का कुछ कर बैठता है उसी तरह मोहनीय कर्म से मोह ग्रस्त जीव सार-असार का ज्ञान भूलता है। विवेक भूलता है। अपना वास्तविक स्वरूप भूलकर बाह्य जड पदार्थों में आसक्त होता है। जो अपने गुण हैं। उनको भूलकर ...,प्रकृति को छोडकर जो अपने नहीं है, जो अपनी प्रकृति नहीं है उसको अपनाता है। स्वीकारता है। मेरी-मेरी कहकर.....मेरे पने की विकृति-मोह-ममत्व निर्माण करता है। जैसे कल तक जिस कन्या के पीछे कोई राग नहीं था। मोह नहीं था और आज प्रेम हो गया है तो अब

उसीके पीछे-पीछे प्रेम में आसक्त बनकर-पागल-बनकर फूल पर भंवरे की तरह घूमता रहता है। बस उसे खाते-पीते-दिन-रात प्रेमिका ही दिखती है। उसी तरह अपनी प्रकृति, अपने मूलभूत स्वभाव को भूले हुए जीव को अब विकृति जन्य मोह दशा में दिन रात, खाते-पीते....मेरा मेरा यही सब कुछ दिखता है। यही जीव की मोहदशा है। मोहनीय कर्म है। आठों कर्मों में सबसे प्रबल कोई कर्म है तो मोहनीय कर्म है—मोहनीय कर्म के अनेक भेद है। इसका कार्य अनेक क्षेत्रीय है।

मोहनीय कर्म के भेद

- **दर्शन मोहनीय**
- **चारित्र मोहनीय २५**
  - **कषाय मोहनीय १६**
    - **क्रोध ४ + मान ४ + माया + ४ लोभ + ४ = १६**
  - **९ नोकषाय मोहनीय**

मोहनीय कर्म के चारित्र मोहनीय विभाग में कषाय मोहनीय कर्म है। कषाय मोहनीय के प्रमुख चार भेदों में क्रोध-मान-माया-लोभ का समावेश है। सोचा जाय तो ये ही चारों कषाय संसार की जड है। संसार का सबसे बडा कारण है। श्री दशवैकालिक आगम में स्पष्ट ही कहा है कि—

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया च लोभो न पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स।।

वश में नहीं किए हुए क्रोध और मान, और बढते जाते माया और लोभ ये चारों काले कषाय जन्म जन्मातररुप संसारवृक्ष की जडों को पानी पिलाते हैं। सिंचन करते है। संसार को बढाते है। अर्थात् भव-संसार को बढाने में सबसे बडा कारण किसी का हो तो वह सिर्फ कषायों का है।

'कषाय' का शब्दार्थ—

कष + आय = कषाय, कष और आय इन दो शब्दों के मिलने से कषाय शब्द बना है। कष = का अर्थ है– संसार, और आय का अर्थ है लाभ। लाभ से क्या अर्थ करना ? संसार का लाभ अर्थात् संसार का बढना। जन्म - मरणरूप जो यह ८४ जीव योनियों में परिभ्रमण करने का चक्कर है उसमें भटकते रहना। इस भव संसार की वृद्धि हो, जन्म - मरण की परंपरा बढ़े, संसार में हमारी भवसंख्या बढ़े– यह संसार लाभ - कषाय का शब्दार्थ हुआ। कषाय - शब्द के आगे 'ई' प्रत्यय कर्तृवाची शब्द बनाने के अर्थ में लगाया जाय तो 'कषाई' शब्द बना। अब कषाई शब्द का क्या अर्थ है ?— आप जो प्रसिद्ध अर्थ है वही जानते हैं 'कषाई' अर्थात् = कषाईखाने - कतलखाने में जो गाय - भैंस - भेड– बकरी काटता है वह 'कषाई'। हां यह अर्थ भी ठीक है। यहां कषाई शब्द इस अर्थ में रूढ हो गया है। उसे खाटकी भी कहते हैं। कषाय शब्द के उपरोक्त अर्थ को यहां भी लगाने से स्पष्ट अर्थ

निकलता है– जो सतत हिंसा जीववध करके अपना संसार बढाता ही जाता है वह कषाई है । और दूसरी बात यह कि.... जीव वध हिंसा करने के लिये सतत क्रोधादि कषायों का आश्रय लेता है । पशुओं को काटने के लिए उन्हें भी सतत क्रोध - लोभ में ही रहना पडता है । अतः सतत कषायवृत्ति में रहने वाले वे भी कषाई है । अतः यहां 'कषाई' शब्द पशु हत्यारा, जीव वध करने वाला इस अर्थ में रूढ हो गया है । अब दूसरा सीधा अर्थ देखिए । जो कषाय करता है वह कषाई कहलाता है । क्रोध -मान - माया - लोभ इन चारों को जो जीवन में स्थान देता है, इन चारों का जो सेवन करता है वह भी "कषाई" कहलाता है । वहां कषाई पशु वध करता है । यहां हम सामान्य क्रोधादि कषाय करके भी किसी का मन दुभाते है, किसी को आत्मा को दुःख पहुंचाते हैं, यह भी अल्प मात्रा में ही क्यों न हो– हिंसा ही हुई । वाचिक हिंसा, मानसिक हिंसा हुई । अतः क्रोधादि कषाय करने वाला भी कषाई बना, वचन हिंसा करके किसी की आत्मा को दुःख पहुचाकर पाप बांधता है । और अपना संसार बढाता है । संसारवृद्धि का मुख्य आधार कषाय पर है ।

संसार कैसे बना ?—

पानी किस तरह बनता है उस प्रक्रिया को बताते हुए...विज्ञान ने H_2O=*Water* का सूत्र बताया है । अर्थात् हाइड्रोजन के दो भाग और ओक्सीजन का एक भाग मिलकर तीसरे पानी द्रव्य के आकार में रूपान्तरित होते हैं । और पानी बनता है । अतः पानी

के मुख्य घटक द्रव्य–हाइड्रोजन और ओक्सीजन ये दो द्रव्य हुए। उसी तरह संसार कैसे बना ? ऐसी जब बात आती है तो लोग कहते हैं ? इसमें क्या बडी बात है इसमें तो सोचना ही क्या है ? ईश्वर ने संसार बनाया है। क्यों बनाया ? बस अपनी लीला के लिए बना दिया है ? लीला क्यों ? बस ईश्वर की इच्छा। इच्छा क्या है ? इच्छा क्यों होती है ? इच्छा कैसे उत्पन्न होती है ? कैसे बनती है ? क्या इच्छा तत्व में राग–द्वेष की मात्रा नहीं हैं ? ... और जब रागादि भाव आए तो फिर क्रोधादि कषाय भी आकर खडे रहेंगे ! इस तरह सारा कर्म संसार आकर खडा हो जाएगा! अतः ईश्वर ने संसार नहीं बनाया है। संसार बनाने के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है ! सर्व जीव मात्र अपने-अपने-राग–द्वेषानुसार संसार बनाते ही रहते हैं। सभी जीवों ने अपना-अपना संसार बनाया है। निर्माण किया है। शास्त्रकार महर्षियों ने संसार की उत्पत्ति का सूत्र *Formula* बताते हुए कहा–"विषय + कषाय = संसार"। विषय–वासना, काम वासना, कामेच्छा, को विषय कहा, और क्रोधादि चार को कषाय कहा ! इस तरह दोनों जहां इकट्ठे हुए, दोनों मिले की संसार बना। संसार बढा ! सब कुछ आ गया ! ये दोनों एक मात्र मोहनीय कर्म के ही घटक है। यह तो एक कर्म की ही बात है। और कर्म तो आठ है। फिर आठ कर्मों में मूलभूत कर्म तो मोहनीय कर्म है। यही संसार बनाता है और बढाता है। यह कर्म है, और कर्म का कर्ता जीव स्वयं है। अतः ऐसे भी कहीए कि–जीव–कर्म के संयोग का नाम है संसार।

कषायों का भी मूल क्या है ?–इसका उत्तर पू. उमास्वाति महाराज प्रशमरति ग्रन्थ में देते हुए कहते हैं—

माया लोभ कषाय श्चेत्येतद् रागसंज्ञितं द्वन्द्वम् ।
क्रोधो मानश्च पुनर्द्वेष इति समास निर्दिष्ट ।।

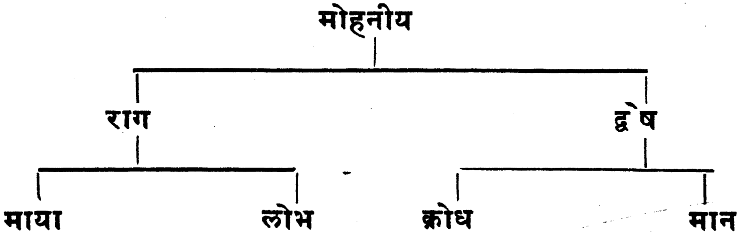

माया और लोभ– ये राग के घर में, और क्रोध तथा मान ये दोनों द्वेष के द्वन्द्व– में गिने जाते है । आखिर इनकी मूल जड तो राग द्वेष ही है ।

क्रोधादि कषायों को १८ पापस्थानक में क्यों गिना गया है ?—

१८ पापों के विवेचन की यह पुस्तक "पाप की सजा भारी" में पापस्थानकों का विचार पहले भी किया है । पिछली पुस्तकों में पांच पापस्थानक तक का विवेचन किया गया है । आज यहां से क्रोधादि कषायों का विवेचन प्रारंभ होता है । अतः यह प्रश्न खडा हुआ है कि क्रोध-मान-माया–लोभादि को पापस्थानों में क्यों गिना गया है । क्रोधादि को पाप कैसे कह सकते हैं ? क्यों कहा है । अतः १८ पापस्थानों में द्रव्य– और भाव पाप का भेद जो किया गया है। उस दृष्टि से १८ पापों को द्रव्य और भाव के दो विभाग में विभक्त किये हैं ।—

१८ पाप

द्रव्य पाप (बाह्य)	**भाव पाप**(आभ्यंतर)
१,२,३,४,५, कलह, अभ्याख्यान, पैशून्य, परपरिवाद	**क्रोध,मान,माया,लोभ, राग, द्वेष, रति-अरति,मायामृषावाद,मिथ्यात्व शल्य**

II

१८ पाप

व्यवहार पाप	**निश्चय पाप**
हिंसा,झूठ,चोरी,मैथुन,परिग्रह,कलह अभ्याख्यान,पैशून्य, रति-अरति,परपरिवाद	**क्रोध,मान,माया,लोभ, राग, द्वेष,मायामृषावाद,मिथ्यात्व शल्य**

इस तरह यदि द्रव्य पाप और भाव पाप के भेद बनाकर विवेचन करें, या व्यवहार पाप और निश्चय पाप का भेद बनाकर विचार करें, बाह्य पाप और आभ्यंतर पाप के भेद की दृष्टि से किसी भी तरह विवेचन करें तो—क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मायामृषावाद, मिथ्यात्वशल्य ये तो अवश्य ही आन्तरिक पाप है। भाव पाप के स्वरूप में इनकी गिनंति की जाती है। और उसी तरह ये निश्चय पाप गिने जाते हैं। क्योंकि कर्मबंध के कारणों में भी–कषायों का मुख्य कार्य है। मिथ्यात्व, अविराति, प्रमाद, कषाय और योग इन पांच प्रकार के कर्मबंध के हेतुओं में कषाय के द्वारा ही तो मुख्य रस बंध होता है। और रस बंध के

आधार पर ही···· 'कर्मों की स्थिति बंधती है। कर्म ग्रन्थ में स्पष्ट कहा है कि–"**जोगा पयडिपएसं, ठिइ अणुभागं कसायाओ**" प्रकृति-बंध और प्रदेश बंध का मुख्य आधार 'योग'–मन–वचन-काया के योग पर है, जबकि कर्म का स्थिति बंध, और रस बंध का–मुख्य आधार कषायों के उपर है। आपके अध्यवसायों (विचारों) में कषाय की मात्रा कितनी है? आपके मानसिक परिणाम यदि कम–ज्यादा कषाय वृत्ति से युक्त है तो उसके आधार पर स्थिति और रसबंध होता है। यदि कषायों की मात्रा कम है तो कर्मबंध को स्थिति (*Time Limit* काल अवधि) कम होगी और यदि किसी भी प्रकार की कर्म प्रवृत्ति में यदि कषायों की मात्रा अत्यधिक ज्यादा होगी, लेश्याएँ ज्यादा अशुभ होगी तो ·· कर्मबंध की स्थिति उतनी ही ज्यादा लम्बी होगी। अर्थात् उतने लम्बे काल तक आत्मा को उस कर्म की सजा भुगतनी पडेगी! जिस तरह भगवान महावीर ने तीसरे मरीचि के जन्म में बांधे हुए नीच गोत्र कर्म की स्थिति कितनी लम्बी रही थी कि····अंतिम २७ वें जन्म में भी महावीर प्रभु को देवानंदा माता की कुक्षी में ८२ दिन के लिए भी जाना पडा। एक कर्म जो बांधा है उसमें २४ जन्म का कितना बडा लम्बा काल निकल गया। उसी तरह १८ वें त्रिपृष्ठ वासुदेव के जन्म में शय्यापालकों के कान में गरम–गरम तपा हुआ शिशु डालने के पाप का परिणाम यह हुआ कि दो बार नरक में गए तो भी · २७ वें जन्म में उनके कान में खीले ठोके गए! अर्थात् एक कर्म कितने लम्बे काल तक आत्मा के साथ रहता है। यह

स्थिति बंध प्रत्येक कर्म का अलग–अलग है। महावोर विभु के जीवन में तो कुछ भी नहीं....।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोटा-कोटि सागरोपम की है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कर्म, वेदनीय कर्म इन चारों की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोटा–कोटी सागरोपम है, नाम–गोत्र कर्म की २० कोटा–कोटी सागरोपम है और आयुष्य की स्थिति–३३ सागरोपम है। इस तरह एक–एक कर्म की काल अवधि जो इतनी लम्बी है उसका कारण क्या है? कषाय! कषायों की मात्रा में जो कम ज्यादा की तरतमता रहती है उसके आधार पर...... उतनी कम–ज्यादा लम्बी काल अवधि का कर्म बंधता है।

उसी तरह रस बंध (अनु भाग बंध) का भी आधार कषाय के उपर है। कषायों में जो कम-ज्यादा तरतमता, (मात्रा) रहती है उसके आधार पर, और कषायों में जो शुभ–अशुभ लेश्या रहती उसके आधार पर जीवों को कर्म बंध होता है उसके आधार पर रस बंध होता है। रस बंध के कारण जीवों को कर्म उदय के समय कम ज्यादा दुःख का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ रोग सभी को उदय में आते हैं, लेकिन किसी के सिर–पेट ज्यादा दर्द करते हैं, असह्य वेदना होतो है, तो किसी को सह्य–कम वेदना होती है! रोग वही है, रोग का प्रकार समान होते हुए भी वेदना में न्यूनाधिक सह्यासह्य उस-उस जीव के कर्म के रस बंध पर आधारित है। इस तरह कर्मों को स्थिति के बध का एवं रस के

बंध दोनों का मुख्य आधार कषाय पर है। अतः जो संसार बढाए-भव वृद्धि करे उसे पाप कैसे न गिनें ? अवश्य ही गिनना पडेगा। कषाय संसार वृद्धि में करण है।—प्रशमरति में स्पष्ट कहा है कि—

एवं क्राधो मानो माया लोभश्च दुःखहेतुत्वात्।
सत्वानां भव संसार दुर्गमार्ग प्रणेतारः ॥

क्रोध, मान, माया, और लोभ ये चारों कषाय दुःख के हेतु है, दुःख के मूल कारण है, जीवों को नरकादि तीव्र दुःखदायि गतियों में दुःख देने वाले हैं, एवं भव संसार के भयानक मार्ग को दिखाने वाले हैं। ऐसे मार्ग पर ले जाने वाले हैं। इसलिए जो दुःख के मूल कारण है, भव संसार के हेतु है, संसार का लाभ कराने वाले, भव संसार बढाने वाले और बिगाडने वाले हैं उनको पाप-कर्म नहीं कहें तो कहना ? वे पाप कर्म ही है। **षडरिपु**—इसमें भी क्रोध—मान—माया, लोभ-राग—और द्वेष ये षडरिपु कहलाते हैं। कहीं पर काम, क्रोध, मद, मान, माया, लोभ इस तरह भी ६ गिनते हैं। लेकिन इस क्रम में मद और मान दोनों एकार्थक (समानार्थक) है। और काम का तो वैसे भी राग में ही समावेश हो जाता है अतः उपरोक्त पहले क्रम में बताए गए षड्रिपु बराबर हैं। ये भाव पाप है, ये आत्मा में रहने वाले है, बिना निमित्त के भी उत्पन्न होते है अतः आन्तरिक—आभ्यंतर पाप कहलाते हैं। ये निश्चय ही पाप कहलाते हैं। व्यवहार पाप के आचरण में तो पाप लगे या न भी लगे लेकिन इन कषायों के सेवन में तो निश्चय ही पाप लगता है। कर्म बंध निश्चय ही होता है। अतः ये निश्चय पाप कहलाते हैं।

अरिहंत–वीतरागी—

जिनकी हम पूजा करते है, जिनकी हम उपासना करते है। नामस्मरण, मंत्र जाप करते हैं। नमस्कार महामंत्र में पाठ करते हैं सोचिए! उस नमस्करणीय महापुरूष के लिए प्रयुक्त "अरिहंत" पद का क्या अर्थ है ? "अरि" अर्थात् आंतर शत्रु, आत्मा के शत्रु। बाहरी हमारे शत्रु तो सेंकडों है लेकिन आंतर शत्रु तो सिर्फ राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ है। 'हंत' अर्थात् इनका जिसने नाश किया है, इनके उपर जिसने विजय पाई है, इनको जीता है ऐसे राग–द्वेष रहित वीतरागी अरिहंत भगवान ही हमारे परम आराध्यपाद है। वे ही हमारे लिए नमस्करणीय है। पूजनीय है। और इसीलिए उन्हें पूजते हैं कि उन्होंने तो सब राग–द्वेषादि जीत लिए है, जीवन में से हद्दपार कर दिए हैं, और हमारे में अभी वे ही राग-द्वेषादि पडे हैं,अतः हम उन गुणवान के गुणों की स्तुति करके उस उच्च आदर्श को देखते हैं जिससे हमें भी हमारे में रहे हुए राग–द्वेष-क्रोधादि कषायों को क्षय–(नष्ट) करने की प्रेरणा मिले, शक्ति मले। इसलिए जिन-पूजा, जिन-भक्ति, जिन दर्शन, जिन गुण स्तवना बहुत ही ऊँचा आदर्श है, यह उत्कृष्ट कोटि की साधना है।

कषायों का स्वरूप—

"स्वभाव" शब्द है। यदि आपको पुछा जाय तो 'स्वभाव' का क्या अर्थ आप करेंगे ? आज कल तो स्वभाव शब्द सभी के भिन्न भिन्न क्रोधी, मानी, मायावी, कपटी, लुच्चा, लोभी-लालचु, आदि अर्थों में रुढ हो गया है। लोग अक्सर कहते हैं, अजी साहब यह तो

बडा क्रोधी है, बहुत गरम-गुस्से वाला है । इनका स्वभाव तो बडा लालचु है, और ये तो कपटी है, मायावी हैं। इस तरह लोग स्वभाव का अर्थ ऐसा करते हैं । लेकिन यह बिल्कुल गलत है । शब्द रचना पर ध्यान दीजिए । स्व+भाव=स्वभाव । स्व से आत्मा, और भाव से आत्मा के गुणधर्म । क्या आत्मा के गुणधर्म क्रोधी, मानी है ? नहीं । आत्मा जो कि ज्ञानमय, दर्शनमय, चेतन द्रव्य है । उसका मूलभूत स्वभाव तो ज्ञानदर्शनात्मक है । फिर उसको क्रोधी मानी कैसे कह सकते हैं ? 'प्रकृति' ज्ञानादि आत्मा की प्रकृति है । वही मूल स्वभाव है । लेकिन आत्मा के ज्ञानादि गुणों पर आवरण आ गए । और आत्मा उन कर्मों से दब गई है । परिणाम स्वरुप अब उन कर्मों की जो प्रकृती है, कर्मों का जो स्वभाव है उसी का व्यवहार आत्मा के लिए भी किया जा रहा है। हां मोहनीय कर्म में क्रोध-मान-माया-लोभादि के भेद--प्रभेद बहुत है उनका आरोपण आत्मा पर करके लोग व्यवहार करते हैं। लेकिन यह आत्मा का सही स्वरुप नहीं है । ये क्रोध-मानादि आत्मा का स्वभाव नहीं-विभाव हैं । विकृत भाव=विभाव । यह प्रकृति नहीं है–विकृति है। इस तरह आज हमने क्रोधादि को स्वभाव मान लिया है । यह हमारी सबसे बडी भारी भूल है । ये क्रोधादि तो कर्म-जन्य अवस्था विशेष है । इसी को हम अपना मूलभूत स्वभाव मानने की भूल न करें ! हमको सतत जागृत रहना चाहिए, सावधान रहना चाहिए कि हम इनको छोड दें । इन क्रोधादि को पास में भी न आने दें । ये हमारे आंतर शत्रु है । इनसे आत्मा को

नुकशान होता है। खटाई से जैसे दूध को नुकशान होता है। उसके गुणधर्म बदल जाते है उसी तरह क्रोधादि कषायों से आत्मा को बडा भारी नुकशान होता है। जन्म जन्मान्तर में दुःख और सजा भुगतनी पडती है!

क्रोधादि कषायों का कार्यक्षेत्र—

कर्मजन्य ये क्रोधादि कषाय भी अपना अपना कार्यक्षेत्र रखते हैं। इनकी सबकी अपनी-अपनी विशेषता है। श्री दशवैकालिक में कहा है कि—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ॥

—क्रोध प्रीति (प्रेम) का नाश करता है। मान विनय का नाश करता है। माया–मित्रता का नाश करती । और लोभ सर्वविनाशक है । सभी सद्‌गुणों का नाश लोभ करता है। इस तरह चारों कषाय नुकशान करने वाले ही है। कोई भी फायदा करने वाला नही है। आज दिन तक कभी भी किसी भी कषाय ने किसी का भी फायदा नहीं किया है। अध्यात्मकल्पद्रुम में कहते हैं–

को गुणस्तव कदा च कषायैर्निममे भजसि नित्यभिमान् यत्।
किं न पश्यसि दोषममोषां, तापमत्र नरकं च परत्र ॥

आपका कषायों ने क्या फायदा किया हैं? क्या गुण किया है? वह फायदा कब किया है? कि तुम उनका सेवन हमेशा ही करते हो। इस जन्म में संताप–पीडा, और दुःख ही दिया है, और इन्हीं कषायों ने अगले जन्म में परभव में नरक गति दी है। इस

प्रकार के कषाय के दोषों को क्या आप अच्छी तरह नहीं जानते हैं ? क्या आप कषायों के स्वरूप से अच्छी तरह सुपरिचित नहीं है ! और यदि है तो चोर को अपने घर में क्यों घूसने देते हो ? आप जानते हुए भी इन लूटेरों को क्यों आने देते हो ?

किसमें ज्यादा सुख है ?–कषाय-करने में ? या छोडने में ?—

यत्कषाय जनितं तव सौख्यं, यत्कषाय परिहानिभवं च ।
तद्विशेषमथवैतदुदर्कं, संविभाव्य भज धीर विशिष्टम् ।।

कषाय के सेवन से अर्थात् क्रोधादि कषाय करने से आपको जो सुख होता है, जो मजा आती है, और कषाय को नष्ट कर देने से निष्कषाय भाव में आपको जो सुख होता है, मजा आती है, अथवा कषाय करने का क्या परिणाम आता है और कषायों का त्याग करने से क्या लाभ मिलता है ?-कैसा परिणाम आता है इन दोनों की अच्छी तरह तुलना करके हे बुद्धिशाली ! इन दोनों में से जो लाभकारी हो, श्रेयस्कर लगे उसका आचरण करो ।

अतः कभी भी कषाय करने में मजा है ही नहीं । यदि ज्यादा कषाय करने में लाभ होता, फायदा होता तो कोई कषाय छोडता ही नहीं ! स्वयं तीर्थंकर भगवन भी कषाय त्याग करने का उपदेश नहीं देते ! आपने तीर्थंकर भगवंतो के अनेक जीवन चरित्र सुने होंगे । सोचिए कभी भी किसी भी तीर्थंकर वे अपने जीवन में कषाय किया हो ऐसा एक भी दृष्टान्त आपकी जानकरी में हो तो बताइए । दीक्षा लेने के बाद तो नहीं ही ·· लेकिन गृहस्थ पर्याय में

भी कभी भी किसी भी तीर्थंकर ने अपने संपूर्ण जीवन काल दरम्यान कषाय किया हो ऐसा एक भी दृष्टान्त आपको कभी भी चरित्र ग्रन्थ में, शास्त्र में देखने को भी नहीं मिलेगा, सुनने को भी नहीं मलेगा !

आपको मनोमंथन करना होगा ! और सबसे पहले तो आत्मा को पूछकर यह निर्णय करना होगा कि—हे आत्मन् ! क्या तुझे कषायों की आवश्यकता है ? क्या कषायों के बिना तेरा जीवन व्यवहार कभी चल ही नहीं सकता ? क्या तू कषायों के बिना संसार में जी ही नहीं सकता ? आप अपनी छाती पर हाथ रखकर अंतरात्मा से पूछ कर देखिए क्या जवाब मिलता है ? कोई कहता है अरे ! महाराज ! संसार में रहना और कषाय से बचना यह कैसे संभव है? करें ही नहीं तो हमारा संसार चले किस तरह? नहीं चल सकता । इसलिए संसार चलाने के लिए थोडा–ज्यादा भी कषाय तो करना ही पडेगा ! थोडी आंखे लाल न करें तो बेटा सिर पर चढ जाय ! थोडा गुस्सा न करें तो नोकर हमारी सुने ही नहीं ! थोडा गरम होकर डांट फटकार न करें तो पत्नी भी आज्ञा के बाहर चली जाय ? थोडा मान–अभिमान न करें तो समाज में खडे रहना ही भारी हो जाय ! थोडी माया न करें तो पेट भी न भरे । और बिना लोभ के तो व्यापार ही कैसे करें ? आजीविका कैसे चलाएं ? इस तरह कई लोग प्रश्न करते हैं ।

लेकिन बडे गौर से सोचिए तो आपको यह महसूस होगा कि ... अरे रे.... यह तो मैंने अपना स्वभाव वैसा बना लिया है इसलिए

मुझे ऐसे विचार आते हैं परन्तु संसार में कई परिवार ऐसे भी हैं जो बडी ही शान्ति से अपना जीवन-व्यवहार चलाते हैं। कई मौन अवस्था में अपना जीवन चलाते हैं। कई बिना कषाय के अपना संसार बहुत ही शान्ति से चलाते हैं। कोई तकलीफ नहीं है। आप पहले से जैसा स्वभाव बनाते हैं उसके अनुसार जीवन व्यवहार चला सकते हैं। अरे ! थोडा सोचिए ! संसार चलाने के लिए आप कषायों का आश्रय लेने गए और उसके कारण आपका संसार सौ गुना बढ गया तो फिर उस बढे हुए, बिगडे लाखों वर्षों का, लाखों जन्मों का संसार कौन संभालेगा ? फिर क्या करेंगे ? यह तो आग बुझाने गए और जल गए जैसी बात हुई। इसलिए कषायों का तो शमन किए बिना, त्याग के बिना कोई विकल्प ही नहीं है। इसी में आपकी बुद्धिमत्ता है। इसी में आपकी विशेषता है। इसी में लाभ है। कषायों ने जिन गुणों को रोका है, दबाया है, वे गुण उन उन कषायों के हट जाने से प्रगट हो जाएंगें। वे कौन से गुण प्रगट होंगे? जिस तरह सूर्य के सामने से बादल हट जाने पर चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है। आवरण हटा लेने पर छिपी हुई (आच्छन्न) वस्तु प्रगट दिखाई देने लगती है। उसी तरह कषाय भी आत्मा के उपर आवरण रुप कर्म हैं। इनको हटाने से आत्मा में पडे हुए अनन्त ज्ञानादि गुण, अनन्त चारित्र, यथाख्यात स्वरुप आदि गुण प्रगट होने लगेंगे। और जिस दिन सर्वथा कषायों का आवरण खतम हो जाएगा उस दिन आत्मा सर्वगुणी वीतरागी सर्व गुण संपन्न सर्वज्ञ पूर्णज्ञानी, पूर्ण स्वरुपी बन जाएगा। जिस तरह मैल नष्ट हो जाने

पर कपडा शुद्ध स्वरुप में आएगा। उसी तरह....कर्मरुप मैल धुल जाने पर आत्मा शुद्ध-स्वरुप में प्रगट हो जाएगा। इसीलिए कषायो को नष्ट करने के लिए ज्ञानी भगवंतों ने सेंकडो उपाय बताए है। किष कषाय को कैसे जीतें ? यह बताते हुए कहा कि—

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चाऽज्जव भावेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।

उपशम भाव से शान्ति से क्रोध को जीतिए। मृदुता नमृता (विनय) गुण से मान को जीतिए। आर्जवभाव अर्थात् सरलता-ऋजुता के जरीए माया को जीतिए, और संतोषवृत्ति से लोभ कषाय को जितिए। इस तरह चारो कषायों को उपशमादि चारें भावों से अच्छी तरह आसानी से जीता जा सकता है।

चारों कषायों में कौन ज्यादा खराब है ?—

कषाय तो सभी खराब हो है। कोई अच्छा नहीं है फिर भी यदि परिणामों के आधार पर तुलना की जाय, या लोक व्यवहार में यदि देखा जाय तो पता चल सकता है कौन ज्यादा खराब है ? कौन कम खराब है ? यह कुछ तरतमता देख सकते हैं। वैसे चारों कषायों की क्रम व्यवस्था भी यदि देखें तो क्रोध के बाद मान, मान के बाद माया, माया के बाद लोभ यह क्रम व्यवस्था है। इसी तरह खराब की अपेक्षा भी इसी क्रम से देखें तो क्रोध से खराब मान है, मान से ज्यादा माया खराब है और लोभ को तो सब पाप का बाप कहा ही है। यह तो सबसे ज्यादा खराब है। अतः इसे सर्वविनाशक कहा है।

किसमें कितने कषाय हैं ?—

संसार में अनन्त जीव हैं। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय की जातियों में और देव-मनुष्य-नरक-तिर्यंच आदि चारों गति में ८४ लाख जीवयोनि के परिभ्रमण में अनन्त जीव भटक रहे है। सभी जीव कषायग्रस्त है। संसारी हो और कषाय रहित हो यह संभव नहीं है। सभी में सभी प्रकार के कषाय है। हां इतना जरुर है कि किसी में क्रोध ज्यादा है तो किसी में लोभ। इस तरह प्रत्येक जीव में कषायों की कम-ज्यादा मात्रा तो भरी पडी है। किसी में क्रोध ज्यादा है तो दूसरे तीन कषाय १०%-१०% प्रतिशत है और क्रोध ७०% रहेगा। इसलिए ७०% क्रोध की मात्रा रहने से क्रोध की प्राधान्यता से उसे क्रोधी कहेंगे। लेकिन दूसरे कषाय नहीं है ऐसी बात भी नहीं है जरुर है, सिर्फ प्रमाण कम-ज्यादा है। उसी तरह किसी में मान की अधिकता है, तो किसी में माया प्रबल है, किसी में लोभ ज्यादा और अन्य कषाय कम है। एक माता के चार लडके हैं तो आप देखेंगे चारों ही क्रोधी नहीं है, किसी में क्रोध ज्यादा है तो किसी में मान, किसी में लोभ। इस तरह कषाय सभी में सर्वत्र पडे हैं। विशेष मोटे तौर से यह कहा जाता है कि पुरुषों में क्रोध और मान का प्रमाण ज्यादा रहता है, और स्त्रीयों में माया और लोभ का प्रमाण ज्यादा रहता है। इसका मतलब यह नहीं कि पुरुषों में माया-लोभ नही रहता। या स्त्रियों में क्रोध-मान नहीं रहता। ऐसी बात नहीं है। प्रत्येक में चारों कषाय है। सभी तारे टिमटिमाते है, प्रकाशमान स्वरुप में चमकते है। फिर भी ध्रुव का

तारा विशेष चमकता है। शुक्र का तारा कुछ अपनी विशेषता रखता है। मुर्गी भी उड सकती है, परन्तु उसकी उडान कम है, और जमीन पर चलना ज्यादा है। वह कौए-कोयल-पोपट की तरह आकाश में दूर उपर उडान नही भरती। पंख युक्त पक्षी होते हुए भी उडने की क्षमता कम और जमीन पर चलने की वृत्ति ज्यादा है। उसी तरह स्त्री-पुरुषों में आपातत: जो स्थूल रुप में मोटे तौर पर जो देखा जाता है उसमें पुरुष क्रोध और मान प्रधान ज्यादा है। जबकि स्त्री में स्वाभाविक ही माया और लोभ की प्राधान्यता रहती है।

कषाय भी पूर्व जन्म के संस्काराधीन है—

संसार में कहीं भी क्रोध–मान कैसे करना यह शिखाने की स्कूलें नहीं है। फिर भी सभी बालकों को बचपन से ही ये सभी चीजे आती हैं। जबकि बालक १० १२ महिने का है, और बोल भी नहीं पाता है ऐसे समय में भी गुस्सा करता है, हाथ में आई हुई वस्तु फेंकता है, तोड–फोड करता है। इतना ही नहीं जो कुछ हाथ में आया उससे वह दूसरे को मारने भी दौडता है। हलकी-सी थप्पड मां को भी मारता है। लेकिन मां को वह अच्छी लगती है। मीठि भी लगती है। परन्तु बालक ने अपनी शारीरिक क्षमता के अनुरूप गुस्सा किया है। अपने प्रमाण में क्रोध किया है। हम हमारे प्रमाण में करते हैं। तिर्यंच पशु-पक्षीयों को भी आपने लडते-झगडते तो देखा ही है कबुतरों को भी एक घर की छत पर लडते–झगडते देखा है। उनमें भी कषाय की मात्रा है। अब प्रश्न यह

उठता है कि जब किसी ने नहीं सिखाया तो फिर क्रोधादि कषाय आए कहां से ? हम शिखे कहां से ? न तो माता पिता ने शिखाया है, और न ही स्कूल में किसी शिक्षक ने शिखाया है ! शास्त्रकार महर्षि कहते हैं कि—ये कषाय पूर्व जन्म के संस्कार से आए हैं। जन्म—जन्मान्तर के संस्कार पडे हुए है। आप कहेंगें पूर्व जन्म में कहां से आए ? अरे उसके भी पहले के जन्म से ! इस तरह अनन्त जन्मों की परंपरा है, उसी तरह देव—मनुष्य—नरक—तिर्यंच की चारों गति में कषायों का अखंड—एकछत्री साम्राज्य है ! देवलोक के देवताओं में भी कषाय वृत्ति भरी पडी है। नरक गति के नारकी जीवों में तो क्रोधादि कषायों की मात्रा हमारे से हजार गुनी है ! कहां नहीं है ? सर्वत्र है। मृत्यु के बाद शरीर तो यहीं पर जलकर भस्म हो जाता है। एक मात्र आत्मा एक गति से दूसरी गति में, एक जन्म से दूसरे जन्म में जाती है। आत्मा अकेली ही आती है, और अकेली ही जाती है। उसके साथ यदि कुछ भी लाती-ले जाती है तो वह सिर्फ अपने किये हुए अच्छे—बूरे शुभाशुभ कर्म ! इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। इसीलिए जन्म—जन्मान्तर के कषायों के संस्कार आत्मा साथ लाती है और साथ ले के जाती हैं ! अभ्यासदशा से जीव अपने—अपने स्वभाव में परिवर्तन करते है। परिवर्तन अच्छा भी होता है, और बूरा भी होता है। दोनों ही प्रकार का परिवर्तन होता है। कभी स्वभाव बिगाड भी देते हैं, और कभी कभी लोग अपने आप को समझा-बूझाकर स्वभाव सुधार भी लेते हैं। किसको कैसा वातावरण मिला है उसके उपर आधार है। घर

में यदि वातावरण ही क्रोधादि कषायों का है तो स्वाभाविक रूप से बालक भी उसी तरह खिंचा जाएगा! भले वह आज नहीं बोलेगा लेकिन दिमागरूपी कैमरे को दो आँखरूपी लेन्स के द्वारा घर के वातावरण का फोटु तो उसकी बुद्धि की फिल्म पर अवश्य ही उतरता है। इसमैं तो कोई शंका नहीं। अब आज की खिंची हुई फोटु फिल्म कुछ दिनों बाद धुलाकर आएगी। उसी तरह कुछ दिनों बाद, कुछ समय बाद बालक के दिमाग की वह कषाय की फिल्म.... घूमेगी.....प्रोजेक्टर मिला तो उसमें घूमेगी और जैसा दृश्य देखा था वैसा दृश्य खडा करेगी। अतः हमें चाहिए कि बालक पर अच्छे संस्कार डालने के लिए उसे हमारे क्रोधादि के स्वभाव से दूर रखें तो अच्छा होगा! हमारी छाप, हमारे शब्दों की छाप-हमारे क्रोधादि कषायों की छाप बालक पर न डालें। उसे दूर रखें!

क्रोध कषाय का स्वरुप—

इससे कौन अपरिचित है? यह सबके अनुभव की वस्तु है। हम सब अच्छी तरह क्रोध के स्वरुप को जानते हैं। क्रोध जब भी आता है। तो हमें पता जलता है। खबर रहता है। क्रोध कभी भी निंद में नहीं आता, बेशुद्ध अवस्था में नहीं आता हमारी जागृति में ही आता है, इतना ही नहीं, हम बुलाते हैं तो ही आता है। बिना आमंत्रण के यह नहीं आता। आता है तब भी पता रहता है और आने के बाद भी ख्याल रहता है कि हाँ चोर घर में घूस गया है। आंखे लाल होने लगती है। होंठ कांपने लगते है। पैर भी कांपने लगते है। शरीर गरम होने लगता है। खून भी गरम होने लगता

है। शरीर का संतुलन कभी कभी अपने वश के बाहर चला जाता है। आवाज में तेजी आती है। आवाज में भी गरमी आती है। आम तौर पर हम जिस प्रकार की ध्वनि में बालते थे उसकी अपेक्षा ज्यादा ऊँचे स्वर में बोलने लगते हे। शब्दों का संतुलत भी लडखडाने लगता है। शब्दों पर अंकुश नहीं रहता। बोलना कुछ है और बोला कुछ जाता है। आवेग और आवेश दोनों हो शब्दों में गति बढाते हैं। प्राय: अपशब्दों की भरमार रहती है धनुष्य की बीज्या पर से छूटे तीर को तरह मुख में से जीभ को बीज्या पर से शब्दों की बौछार तीव्रता के साथ शुरु हो जाती है। शब्द ही शस्त्र का काम करते हैं। क्रोध की अवस्था में सारा काम शब्द ही करते हैं। गाली गलौच की मात्रा बढ जाती है। तीर-बंदूक या भाला फेंकने के लिए तो पहले निशाना ताकना पडता है लेकिन शब्दों को फैंकने में निशाना भी नहीं ताकना पडता। तीर-बंदूक का नि. शाना यदि नहीं जमा तो वार खाली जाएगा। तीर-गोली निरर्थक व्यर्थ जाएगी। लेकिन शब्दों का वार खाली नहीं जाता। बिना निशाने के भी वह दूसरे के कलेजे के दो टूकडे करता हुआ आरपार निकल जाता है। शस्त्र का घाव, गोली का घाव तो कभी–कभी शल्य क्रिया के द्वारा ठीक भी हो जाता है, लेकिन शब्दों की चोट का घाव कभी–कभी वार्षों तक दु खी करता है। सताता है। पीडा पहुँचाता है। ऐसे मर्मस्पर्शी शब्दों का घाव कभी नहीं भी भरता! कभी–कभी वर्षों तक तो कभी–कभी जन्मों–जन्म तक सताता है ! मानसिक स्वस्थता नष्ट होती है। मानसिक तनाव काफी

ज्यादा बढता है। ऐसे तीव्र क्रोध में कई बार रक्तचाप ज्यादा बढता है। दिमाग की नसों में तनाव वढता हुआ दिखाई देता है। कई बार रक्त का दबाव बडता है। दौरा बढता है। कई बार अपनी शारीरिक क्षमता के बाहर जब क्रोध बढ जाता है तो ऐसी अवस्था में मष्तिस्क की नस भी तोड देता है। ब्रेन हेमरेज हो जाता है। अस्वस्थ और अशक्त मनुष्य वार–प्रहार करने की ओर झूकता है। जो भी हाथ में आया वह उठाया और फेंका। उस समय वस्तु-साधन कुछ भी हो, चम्पप हाथ में आया तो वही सही, ढेला, पत्थर या लकडी हाथ में आई तो वहो सही, कई तो कूर्सी.... और मेज तक उठाकर फेंक देते है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने आपको संभाल नहीं पाता है! आवेश बडा खराब होता है। अपनी शारीरिक शक्ति न होते हुए भी न मालुम क्रोध के समय इतनी शक्ति कहां से आ जाती है? क्रोध में भी दसगुनी ज्यादा शारीरिक शक्ति खर्च होती है, और बीस गुनी ज्यादा मानसिक शक्ति नष्ट होती है। क्रोधी की दशा खराब हो जाती है। घण्टे–दो–चार घण्टे के बाद जब क्रोध शांत होता है तब बिचारा क्रोधी–दो-चार माइल तेजी से दौडकर थके हुए मनुष्य की तरह थक जाता है। थकान का अनुभव करता हुआ मुडदे-की तरह पडा रहना पसंद करता है। आखिर क्रोध में भी काफी शक्ति खर्च होती है। जैसे एक बाल्टी परिमित पानी से एक–एक ग्लास से कोई कपडा धोकर पानी बचाता है, और दूसरा नल के नीचे ... तेज पानी के प्रवाह में कपडे धोता है वह पानी बचाता

नहीं है बहाता है। आखिर प्रयोजन तो एक ही है, कपडा ही धोना था। लेकिन एक कपडा एक बाल्टी पानी से भी धोया जा सकता था और वही कपडा नल के नीचे धोता है! कितना पानी का नुकशान करता है। उसी तरह वही बात सीमित शब्दों में शान्ति से भी कह सकते थे लेकिन क्रोध के आवेश में खुल्ले नल की तरह शब्दों की बौछार बरसात की तरह चलती है। दस गुनी शक्ति नष्ट होती है। जरुरियात से ज्यादा बोलना पडता है। क्रोधी प्रायः विवेक भूल जाता है! मान खो बैठता है। अंट संट बोलता है। कबर में गाडी हुई बातें भी उठा लाता है। अग्निदाह में जले हुए मुडदे की राख में से भी शब्द ढूंढता है। विनय–विवेक भूला हुआ क्रोधी विचारशक्ति को भी तोड देता है। बिना विचारे ज्यादा बोलता है। ज्यादा बोलने में क्रम का ख्याल नहीं रहता। और पुनरोक्ति दोष क्रोधी के शब्दों में बार–बार देखा जाता है। एक ही बात को दस बीस बार भी बोलता है।फिर भी संतोष नहीं होता मां-बाप- आदि के उपर की गालियां और ऐसी गंदी अश्लील गालियां भी बोलने लगता है कि दूसरे सुनने वाले भी उसकी किंमत करते हैं।

क्रोधी कर्म से चण्डाल बनता है—

वर्णाश्रम व्यवस्था में तो कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य तो कोई शूद्र कहलाता है। यहां तो शूद्र जन्मजात शूद्र है। ऐसे चण्डाल के घर उसे जन्म मिला है अतः क्या कर सकता है। अतः जन्मजात शूद्र या चण्डाल तो फिर भी अच्छे परन्तु...

क्रोध करने वाला भी समाज में अस्पृश्य–शूद्र गिना जाता है । कोई उससे संबंध रखना पसंद नहीं करते । एक तो अपने हल्की वर्ण (जाति) और हल्के कार्य के कारण चण्डाल गिना जाता है, जबकि दूसरा अपने हल्के शब्द प्रयोग से चण्डाल गिना जाता है । गंदी गाली–गलौच के कारण क्रोधी मनुष्य चण्डाल की उपमा पाता है । चण्डाल शब्द से संबोधित भी किया जाता है । चंड शब्द तीव्र क्रोध के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । और कभी–कभी–'प्र' उपसर्ग और भी ज्यादा जोडकर प्रचंड शब्द बनाया जाता है । जैसे 'प्रचंड आग लगी है' । भयंकर अर्थ भी होता है ।

चंडकौशिक—

विहार करते साधु महाराज के पैर के नीचे मेंढक दब गया, मर गया । शिष्य ने गुरू का ध्यान भी खिंचा परन्तु गुरू को अपमान सा लगा । क्रोध भयंकर आ गया ! क्रोधवृत्ति में शिष्य को मारने दौडे लेकिन बीच में खंभे से टकराए, सिर फट गया । खून बहने से मृत्यु हो गई । क्रोध में मरकर आश्रम के तापस बने । कौशिक उनकी गोत्र थी । गोत्र के नाम से लोग पुकारते थे । पूर्व जन्म के क्रोध के संस्कार इस जन्म में डबल हो गए, भयंकर क्रोध करता था । अतः लोगों ने चंड शब्द उसके गोत्र के नाम के आगे जोडकर चंड कौशिक–चंड कौशिक पुकारना शुरू किया । एक बाग के आम की रक्षा के लिए लडकों की टोली को मारने के पीछे भगा इतने में खड्डे में गिर गया । हाथ में रहा हुआ दातरी शस्त्र पर सिर टकराया । प्रचण्ड क्रोध में मरकर तिर्यंच गति में सांप बना । कितना भयंकर क्रोध ? प्रभु महावीर के चरणों में आकर काटा ।

करुणासागर कृपालुदेव ने शान्त मुद्रा में उस सांप को संबोधित हुए उसके पूर्व जन्म का नाम लेकर कहा—"बुझ-बुझ चंडकौशिक! हे चंडकौशिक ! शान्त हो शान्त हो ! यह सुनते ही सांप की आत्मा जागृत हो गई, पूर्व जन्म का ज्ञान प्रगट हो गया ! उसने अपने आप को संभाल लिया । सजाग किया । ओहो ! भयंकर प्रचंड क्रोध करने वाला चंडकौशिक मैं ही हुं ! अरे रे ! एक क्रोध में मैंने तीन-तीन जन्म बिगाडे ? सोई हुई आत्मा को जगाई और स्वस्थ शांत चित्त से तीन जन्मों के क्रोध की क्षमा याचना की, क्रोध के पाप का पश्चाताप और प्रायश्चित्त किया ! गति सुधर गई । जन्म सफल हो गया । स्वर्ग में गया !

चण्डरुद्राचार्य–आचार्य महाराज का क्रोध—

चण्डरुद्राचार्य यह आचार्य महाराज का नाम है । इस नाम के प्रसिद्ध आचार्य भगवंत हुए। लेकिन भयंकर प्रचण्ड क्रोध के स्वभाव के कारण सभी शिष्य भी भग गए । अकेले रहने लगे । विचरने लगे । एक बार गांव के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे थे कि बरात के कुछ मित्र लडके एक वरराजा के साथ आए । आचार्यश्री के पास आकर मजाक करते हुए बोले महाराज इसको दीक्षा लेनी है । दीक्षा दीजिए । आचार्य श्री ने पास में थूकने के लिए पडी राख का कटोरा उठाया । वरराजा के बाल पकड कर खिच लिए । युवक चिल्लाते रहे और महाराज ने तो बाल खिचकर लोच कर दिया । सिर मूंड दिया । अब क्या करें । सभी अन्य युवक तो भग गए । उसको महाराज ने कपडे पहनाए । साधु बनाया । गुस्से में ही यह काम किया था ।

शिष्य बडा समझदार था। वह परिस्थिति को अच्छी तरह समझ गया। सरल-शांत स्वभावी शिष्य को आचार्य श्री की दया आई। कहीं ऐसा न हो कि बराती सभी दौड कर आए और महाराज की धूलाई न कर दे। इसलिए नूतन शिष्य ने कहा गुरूजी अब तो जल्दी विहार करके भगना पडेगा। गुरु ने कहा अरे भाई! मैं तो बूढा हुं। दिखता कम है। अभी शाम हो गई है। अभी रात हो जाएगी। फिर तो मुझे बिल्कुल ही नहीं दिखेगा। कैसे विहार करुं? शिष्य ने कहा गुरुजी अब अपवाद का सेवन करके भी यदि विहार नहीं करेंगे तो शासन की हीलना होगी। निंदा होगी। और बराती सब आ जाएगे तो अनर्थ हो जाएगा। गुरु ने कहा अच्छा भाई अब तूम ही बताओ क्या करें? नूतन शिष्य ने कहा-गुरुजी आप मेरे कंधे पर बैठ जाओ और मैं जल्दी जल्दी चलूंगा, इस तरह यहां से दूर चले जाएँ तो ठीक रहेगा। वैसे ही हुआ। चले जा रहे थे, रात हो चुकी थी। ठीक न दिखने पर पैर इधर-उधर टेढा-मेढा गिर रहा था,कभी छोटे-मोटे खड्डे में भी गिर जाता था। फलस्वरुप कंधे पर बैठे गुरु महाराज भी थोडे इधर-उधर हिल जाते थे। स्वभाव के बडे ही क्रोधी गुरु ऐसे समय पर शिष्य के सिर पर डंडा मारते थे। फिर भी शिष्य ने सोचा चलो ठिक ही है। आखिर गुरु ही है। एक तरफ तो नया नया केश लोच किया हुआ था और उस पर गुरु डंडे की चोट... दो चार डंडे लगने पर खून निकला। गुरु कंधे पर बैठे थे। खून की धारा बहने लगी। फिर भी गुरू डंडा मारते रहे। अबे ए....सीधा चल। दिखता नही है?

इतने क्रोध के सामने भी शिष्य बडी ही समता के साथ ग्रात्मा को समझाता गया ग्रौर मनोमंथन करता हुग्रा चिन्तन की धारा में चढा कर्मों की निर्जरा ग्रद्भूत होने लगी। थोडी देर में पौफटन के उषाकाल के पहले शुभ ग्रध्यवसाय की धारा में शिष्य को केवल ज्ञान उत्पन्न हुग्रा। ग्रब तो सवाल ही नहीं था। ज्ञानचक्षु प्रगट हो गए थे।ग्रन्धेरे में भी ग्रांखे बन्द रखकर चले तो भी सब स्पष्ट दिखाई देने लगा। ग्रच्छी तरह चलने लगा। गुरु ने कहा क्यों.... डंडा पडा तो सीधा चलने लगा।ग्रब कैसे सीधा चलता है? शिष्य.. गुरुजी ग्रब तो सब दिखाई देता है। गुरु ग्ररे! ग्रभी तो रात है ग्रौर कैसे दिखाई देता है? शिष्य-गुरुजी। ग्रापकी कृपा से ग्रब तो ग्रांख बंद करु तो भी दिखता है,ग्रौर खुल्लो रखु तो भी दिखता है। रात में, ग्रंधेरे में, प्रकाश में....सब कुछ स्पष्ट दिखता है। ये शब्द सुनकर गुरु को ग्राश्चर्य हुग्रा। ग्ररे! ....गजब हो गई।ग्ररे। ठहर... ठहर। ग्रांख बन्द रखे तो भो ग्रन्धेरे में दिखता है तो क्या तुझे ज्ञान हुग्रा है? क्या तु ज्ञान से देखता है कि ग्रांख से? शिष्य गुरुजी ज्ञान से देखता हुं। ग्ररे तो कैसा ज्ञान हुग्रा है? प्रतिपाती कि ग्रप्रतिपाती? शिष्य-गुरुजी। ग्रापकी कृपा से ग्रप्रतिपाती। ग्ररे....रे। ठहर... ठहर। मुझे नीचे उतरने दे। ग्रौर ग्राचार्यश्री नीचे उतर कर शिष्य के चरणों में झुककर खमाने लगे। ग्रपने ग्रपराध की क्षमायाचना करने लगे। ग्रौर पास में बैठकर ग्रांखों की धारा बहाते हुए पश्चाताप को धारा में क्षपकश्रेणि शुरु की। ग्रात्मा को ध्यान की धारा में चढाई। कर्मों की निर्जरा होने लगी। प्रात:

काल होते होते तो.. अपने क्रोध पर पश्चाताप करते करते आचार्य श्री चंडरुद्राचार्यजी को भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

धन्य धन्य ...जिन शासन। कैसे कैसे क्रोधी भी केवलज्ञान पा गए? और शादी के लिए बरात में आए हुए वरराजा ने भी किस तरह दीक्षा ली? मजाक में भी दीक्षा ली और एक रात्री में केवलज्ञान। कोटि....कोटि वार वंदना।... आखिर समता का साधक ही साधना का फल पाता है। क्रोध कषाय तो सारी साधना पर पानी फेर देता है।

क्रोधे क्रोड पूरव ताणुं संयम फल जाय—

क्रोध कषाय से कितना नुकसान होता है देखिए। जिस तरह एक दिन का बुखार भी ६ महिने की शक्ति को नष्ट कर देता है। बुखार भी ताप है, और क्रोध भी ताप है। अग्नि है। जिस तरह अग्नि सब कुछ जलाकर भस्मसात कर देती। जो आवे वह सब स्वाहा। वैसे ही क्रोध को भी अग्नि की उपमा दी है।

आग उठे जे घर थकी ते पहेलुं घर जाले।
जल नो जोग जो नवि मले, तो पासे नुं पण जाले॥

मानों किसी घर में आग लगी है और यदि पानी न मिला तो पास का दूसरा घर भी जला देगा। इसी तरह क्रोधी–क्रोध को आग में जल रहा है और ऐसे समय में यदि उसे शान्त करने वाला ठंडा करने वाला कोई न मिले तो संभव है आस–पास के अनेकों को नुकसान पहुंचाएगा। चंडकौशिक सर्प को यदि प्रभु महावीर

न मिले होते तो वह सांप न मालुम और कितनों को नुकसान पहुंचाता ? और कितनों को मारता ! अतः महावीर प्रभु मिल गए उन्होंने चंडकौशिक को बुज्झ-बुज्झ के दो शब्दों की वाणी रूपी पानी से शान्त-ठंडा कर दिया। चंडकौशिक के क्रोध की आग सदा के लिए बुझ गई। वह सचमुच बुझ गया। बोध पा गया !

चारित्र-(दीक्षा) लेकर वर्षों तक उसका पालन करके वर्षों का चारित्र पर्याय इकट्ठा करें, इस तरह करते चलें तो एक क्रोड पूर्व वर्ष का चारित्र पर्याय कितने जन्मों में इकट्ठा होगा? सोचिए? थोडा हिसाब लगाइए। जैसे उदाहरणार्थ आज हमारा ८०-१०० वर्ष का आयुष्य हो और उसमें २० वर्ष की आयु के आस-पास भी दीक्षा लें तो लगभग ६०या ८० वर्ष का चारित्र पर्याय इकट्टा हो। इस तरह फिर दूसरे जन्म में, फिर तीसरे जन्म में इस तरह कितने जन्मों में दीक्षा लें तो एक क्रोड पूर्व का चारित्र इकट्टा हो ? जैसे आपने १ वर्ष में १ लाख रूपए कमाए दूसरे साल और १ लाख रूपए कमाए इस तरह आप सौ वर्ष तक कमाते ही जाओ तो १ करोड रूपए कमा सकते हो। परन्तु, सोचिए। ये १ करोड रूपए कमाते आपको १०० साल लगे। जिन्दगी भर की मेहनत, खून का पसीना। और कितना परिश्रम इतना सब करने के बाद भी यदि आपके घर चोरी हो गई, डाकुओं ने लूट चला दी तो १ मिनिट में १ घंटे में १ एक करोड रूपए जा भी तो सकते हैं? अवश्य जाएगें। ठिक इसी तरह देखिए एक करोड पूर्व का चारित्र पर्याय अनेक जन्मों में इकट्ठा किया हो ·· और उतना किंमती चारित्र पर्याय एक

क्षण के क्रोध से नष्ट हो जाता है। क्रोध रूपी चोर यदि आत्मा के घर में घूस कर आत्म गुणों की चोरी करे तो एक क्षण में सब मटिया मेट कर दे। सब पानी फेर दे। जैसे १ एक दिन का ज्वर ६ महीने की शारीरिक शक्ति ले जाता है। उसी तरह यह परि-स्थिति बनती है। कितना प्रबल है ? कितना सशक्त शक्तिमान है यह क्रोध कषाय। अब यदि इसको नहीं जीतेंगे। जीवन में से नहीं निकालेंगे तो यह कितना नुकसान करेगा? इसकी कोई कल्पना ही नहीं है। कितना भव संसार बिगाड देगा ? अनेक शास्त्रकार महा पुरूष क्रोध के नुकसान के विषय में अपनी कलम किस तरह चलाते हैं उसके थोडे नमूने देखिए।—

क्रोध के कारण कितना नुकशान होता है ?–क्रोध क्या करता है ?

क्रोधः परितापकरः सर्वस्योद्वेगकारकः क्रोधः।
वैरानुषङ्ग जनकः क्रोधः क्रोधः सुगतिहन्ता॥

परिताप–संताप–पीडा–दु:ख। आग की तरह जलना। क्रोध संताप कराता है। चारों तरफ से जलाता है अतः परिताप कराता है। दाहज्वर की तरह क्रोध की स्थिति है। सभी को उद्वेग कराने वाला क्रोध है। घर में क्रोध एक व्यक्ति करे लेकिन उद्वेग सभी को होता है। सभी भय उत्पन्न कराता है। क्रोध वैर की परंपरा खडी कर देता है और यही क्रोध सद्गति का नाश करता है। सुगति अर्थात् मोक्ष का भी घातक क्रोध है। शास्त्रों में जिनके नाम आए हैं ऐसे सूभूम चक्रवर्ती और परशुराम जैसे ने अपने क्रोध के कारण

सारी धरती पर हाहाकार मचा दिया था। **"धरणी परशूरामे, क्रोधे नक्षत्री कीधी" धरणी सुभूमराये क्रोधे निब्रह्मी कींधी"**परशु-राम ने अपने प्रचंड क्रोध से सारी धरती नक्षत्री कर दी अर्थात् सभी क्षत्रीयों को खतम कर दिया। सारी क्षत्रीय जात को समाप्त करके धरती को पानी की अपेक्षा खून से लथपथ कर दी। और उसी तरह सुभूम जैसे चक्रवर्ती ने सारी धरती को निब्रह्मी–ब्राह्मण रहित बना दी। समस्त ब्राह्मणों की कतल करके उनको मौत के घाट उतारकर खून को नदीयां बहा दी। ऐसे नराधमों ने अपने व्यक्तिगत क्रोध के कारण, या किसी १ व्यक्ति के क्रोध के निमित्त समस्त जाति को ही नष्ट कर दी। आखिर इतना भयंकर क्रोध करने के कारण, इनकी क्या सद्गति संभव है ? नहीं कभी नहीं। चक्रवर्ती होने मात्र से क्या हो जाता है ? आखिर मरकर सातवीं नरक में गया। अब वहां ३३ सागरोपम के लम्बे काल असंख्य वर्षों तक का दु:ख सहन करने के सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं है।

क्रोधो नाशयते बुद्धिमात्मानं च कुलं धनम् ।
धर्मनाशो भवेत् कोपात्, तस्मात् तं परिवर्जयेत् ।।

क्रौध बुद्धि का नाश करता है। अपना खुद का भी और कुल तथा धन का भी नाश करता है। साथ में धर्म का भी नाश क्रोध से होता है। इसीलिए क्रोध का त्याग करना ही चाहिए। इस श्लोक में कितना नुकशान बताया गया है। "कोहो पीइं पणासेइ" क्रोध प्रीति प्रेम का नाश करता है। क्रोध किसी के भी घर में जाकर खडा रहे। चाहे वह साधु-संत, गुरू शिष्य के बीच हो या चाहे

बाप-बेटे, मां-बेटी, सासु- बहु, या पति--पत्नी किसी के भी बीच में जाकर खडा रहे तो समझ लीजिए वहां पर प्रीति-प्रेम के संबंध को पहले तोडता है। क्रोध हमेशा ही कैंची का काम करता है। एक के दो करना। घर तोडना, संबंध तोडना। यह इसका कार्य है। क्रोध ने कहीं भी सूई का जोडने का काम कभी भी नहीं किया है। यही इसका सबसे बडा दोष है। एक दिन एक थाली में साथ बैठकर भोजन करने वाले सगे भाई क्यों एक दिन अलग होकर रहते हैं ? ऐसा भी दिन आ जाता है कि एक दूसरे का मुंह भी देखना पसंद नहीं करते। कभी कभी तो जिन्दगी भर एक दूसरे से नहीं बोलते। ऐसा क्यों होता है? सामान्य क्रोध के कारण दोनों के बीच में कुछ बोल-चाल से ऐसी बाजी बिगड गई कि एक दूसरे के शब्द कई बार बरसों तक दिमाग में घूमते हैं। क्रोध भयंकर दाह पैदा करता है। कहते हैं—

उत्पद्यमानः प्रथमं दहत्येव स्वमाश्रयम् ।
क्रोधः कृशानुवत् पश्चादन्यं दहति वा न वा ।।

कभी भी कोई भी छोटा-बडा निमित्त पाते ही क्रोध उत्पन्न होकर पहले तो अपने ही आश्रय स्थान को जिसमें वह स्वयं रहता है उसको जलाता है। आश्रय स्थान रुप शरीर में रहता है उस शरीर को ही पहले जलाता है। शरीर जलने लगता है या अपना घर जलने लगता है। बाद में अग्नि की तरह दूसरे को जलाए या चाहे न भी जलाए लेकिन अपने आपको तो जरुर जलाएगा। यदि सामने वाला क्षमाशीय समता का साधक होगा तो उसको नहीं भी

जला पाएगा लेकिन अपने आपको तो अवश्य जलाएगा। जैसे गीले वृक्ष को वनदाह भी नहीं जला पाता उसी तरह ८ वर्ष कम ऐसे पूर्वकोटि वर्ष तक चारित्र को पालने वाले साधक की संयम साधना को भी जैसे आग रुई को जलाती है उस तरह जलाकर क्षण में भस्म कर देता है। ऐसा क्रोध अग्नि से भी ज्यादा प्रज्वलनशील है।

अतिशय पुण्य के संचय से संचित किया हुआ समतारुपी जल क्रोधरुपी विष की एक बूंद के स्पर्श मात्र से अपेय हो जाता है। जैसे रसोइघर का धूँआ चारों तरफ घर के रंग को काला कर देता है।वैसे ही क्रोधाग्नि का धुँआ भी सज्जन के सेंकडों गुणों पर कालीमा लगा देता है। अर्थात् अनेक गुण होने पर भी क्रोध करने का एक छोटा सा दुर्गुण भी सेंकडों गुणों को ढांककर कालिमा लगा देता है कई बार अनेक गुण संपन्न अच्छे अच्छे सज्जन-सद्-भागी भी थोडे से क्रोधी स्वभाव के कारण गिर जाते हैं। नोकरी से हटा दिए जाते हैं। भागीदारी टूट जाती है यहां तक कि चारित्र जैसा किंमती रत्न भी हाथ में से चला जाता है। क्रोध कई बार अच्छे-अच्छे के वैराग्य को नष्ट कर देता है और संसार में खिंच लाता है। कार्यसिद्धि कभी कभी हाथवेंत दिखाते हुए भी क्षणिक क्रोध सिद्धि को नष्ट कर देता है। सिद्धि हाथ ताली देकर चली जाती है। लक्ष्मी लपडाक मारकर भग जाती है इस तरह सेंकडों दोष क्रोध के हैं।

क्रोध से तप भी नाश हो जाता है—

हरत्येकदिनेनैव, तेजः षाण्मासिकं ज्वरः ।
क्रोधः पुनः क्षणेनापि, पूर्व कोट्यार्जितं तपः ।।

ताप (ज्वर-बुखार) तो एक दिन में छ महीने की सारी शक्ति को नष्ट करता है लेकिन इससे भी ज्यादा प्रबल क्रोध तो पूर्वक्रोड वर्ष के किए हुए तप को नष्ट कर देता है। तप करना कोई आसान काम नहीं है। असह्य क्षुधा को सहन करना कोई खेल नहीं है। फिर ऐसे असह्य को भी तपस्वी सहन कर लेता है लेकिन अफसोस इस बात का है कि ... तपस्वी इतनी क्षुधा सहन करते हुए भी किसी के दो शब्द को सहन नहीं कर सकता और बाजी बिगड जाती है। सारी तपश्चर्या पर पानी फिर जाता है। इतना ही नहीं तपस्वी जब क्रोध करता है तब महा अनर्थ कर देता है। जैसा कि द्वैपायनऋषि के जीवन में हुआ।-द्वैपायनऋषि पर्वतमाला में तपश्चर्या करते हुए ध्यान मग्न थे। ऐसी साधना में शांब-प्रद्युम्न ने नशे में उनकी मजाक की। उन्हें कुछ सताया। ऋषि कोपायमान हो गए। और उनके क्रोध का नतीजा आया कि द्वैपायन ऋषि ने क्रोधाग्नि में स्वयं जलते हुए सारी द्वारिका नगरी का दहन किया। प्रजा सहित सारी द्वारका जला कर भस्म करदी। इतना ही नहीं यादव कुल का नाश कर दिया। जगत में क्रोध की कोई सीमा ही नहीं होती! जगत में जन्मान्ध, धनान्ध, मदान्ध, कामान्ध आदि अन्ध के अनेक प्रकार है उनमें क्रोधान्ध भी एक प्रकार गिना जाता है। क्योंकि क्रोधी भी अन्धे की तरह आगे पीछे कुछ भी नहीं देखता! विचारहीन, विनयहीन, विवेकहीन, दृष्टीहीन भी बन जाता है। न तो तप में क्रोध करें और न ही क्रोध करके तप करें। दोनों निष्फल जाते हैं। आखिर क्रोधादि कषायों के द्वारा जिन कर्मों का

बंध हुआ है उनके क्षय के लिए तो तप किया जाता है, और फिर यदि तप करके भी क्रोध करते हैं तो और नए कर्मों का बंध होगा! फिर दूध उबालें फिर पानी डालें, फिर दूध उबालें फिर पानी डालें……इसी तरह यदि बार-बार क्रम चलाया ही जाय तो क्या फायदा ! यह तो मूर्खता का प्रदर्शन होगा। इसी तरह क्रोध करके नाराज होकर गुस्से में तप करें, और फिर तप में क्रोध करें, फिर तप करें फिर क्रोध करें तो इसका तो अन्त ही कहां हो ? तपस्वी भी क्रोध करके सब हार जाता है।

तप करके वैर के नियाणे—

"क्रोधो वैरस्य कारणम्" कई बार क्रोध का यदि शमन न हो तो क्रोध वैर परंपरा को भी बढा देता है। इसी वैर की परंपरा का कारण क्रोध को कहा गया है। अग्निशर्मा तापस मासक्षमण के उपर मासक्षमण (एक-एक महिने के उपवास) करता था लेकिन तीन बार पारणा न होने के कारण भयंकर गुस्सा आया। गुस्सा रूका नहीं। क्षमा भाव नहीं जगे। और गुणसेन के प्रति ऐसे द्वेष की गांठ बंध गई की जनम जनम ··इसके मारने वाला तो मैं ही बनु ऐसा घोर नियाणा कर लिया तप को भी धो दिया। और जनम भो बिगाडा। तथा आगे के भवों में गुणसेन की आत्मा को बार-बार मारने का घोर पाप करके बार-बार नरक में जाता रहा। संसार बिगड गया !

उसी तरह कमठ ने भी अपने ही सगे छोटे भाई मरूभूति पर भयंकर क्रोध करके पत्थर उठाकर सिर पर पटक कर सिर फोड़

कर मार ढाला। और घोर नियाणा किया कि–"जनम... जनम.... इसको मारने वाला तो मैं ही बनु....."! वही हुआ। दस–दस भव की वैर परंपरा चलो। और सभी भवों में कमठ मरूभूति को आत्मा को मारता ही रहा। मारकर महापाप उपार्जन करता हुआ बार-बार नरक में जाता रहा। अन्त में मरूभूति दसवें भव में पार्श्वनाथ बनकर मोक्ष में गए। और कमठ आज भी संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

विश्वभूति राजकुमार जो कि भगवान महावीर का ही जीव १६ वें जन्म में... मासक्षमण की तपश्चर्या करके भी विशाखानंदी पर क्रोध करता है, और नियाणा बांधा कि–"अगले जन्म में भी इसे मारने वाला तो मैं ही बनु" आखिर वैसा ही हुआ! और १८ वें जन्म में त्रिपृष्ठ वासुदेव बनकर आखिर सिंह को फाड के मार गिराया। कई कर्म बांधकर... १९ वे जन्म में वे सातवीं नरक में गए। क्रोध १ मिनिट का, एक क्षण का... और सजा कितने वर्षों की? कितने जन्मों की? सोचिए? ऐसे क्रोध से क्या फायदा?

तपश्चर्या में क्रोध का परिणाम? और समता का फल—

कुरगडु मुनि शारीरिक क्षीणता के कारण तप नहीं कर सकते थे। और थौडा सा भी आहार मिला कि वे उतने में ही संतोष मान कर चला लेते थे। यद्यपि आहार की लोलुपता नहीं थी फिर भी अशक्ति थी। कूर और गडु चावल और कोई ऐसा विशेष खाद्य पदार्थ के कारण कूरगडु उनका नाम पड गया था। साथी अन्य मुनिगण मासक्षमण की तपश्चर्या करते थे। लेकिन

कषाय की मात्रा भी अधिक थी । ये कूरगडु मुनि हमेशा ही गोचरी लेने जाते थे और लाकर साथो तपस्वी मुनिओं को दिखाते थे। आहार देखते हुए तपस्वी मुनिओं को बडा गुस्सा आता था और डांटते थे.. अरे! रोज.... रोज क्या खा.... खा.... करते हो? अनाज के कोडे। खाने में ही रह जाओगे। इतने कटु शब्द सुनकर भी खुब समता में रहते हुए कूरगडु मुनि तपस्वीओं को वन्दना करते हुए अनुमोदना करते थे। और अपनी तप की अशक्ती पर पश्चाताप के साथ बेर-बेर जितने बडे आंसू बहाते थे!

एक बार तो तपस्वी मुनिओं को गोचरी (आहार-पानी) दिखाने गए.... तो उनको इतना क्रोध आया कि उन्होंने उसके पात्र में थूक दिया। फिर भी समता के उपासक मुनि उस आहार को लेकर अन्दर एकान्त में गए। और आतमा को समझाते हुए खाने बैठे। हे जीव तु! आज धन्य बन गया है। कृतार्थ-कृतपुण्य बन गया है। तपस्वीओं की लब्धि तुझे मिल गई है। हे प्रभु! मेरे भी तप के अन्तराय कर्म तूटे इस भावना से जैसे ही पहला कवल तपस्वीयों के थूके हुए कफ का खाया कि क्षपक श्रेणि में पश्चाताप की धारा में चढे हुए कूरगडु मुनि के घाती कर्मों का क्षय हुआ... और अनन्त-केवलज्ञान प्रगट हुआ। सर्वज्ञ-केवली बने। देव-देवीयां आए। ऐसे समय में देव-देवीयों को अन्दर कूरगडु मुनि के पास जाते हुए देखकर आश्चर्य हुआ। आक्रोश भी हुआ! अरे! मासक्षमण के तपस्वी तो हम हैं और ये देव-देवीयाँ उस रोज खाने वाले के पास क्यों जाते हैं?.... अन्त में देव-देवीयों ने कहा....

महाराज केवली की आशातना मत कीजिए ! ... समता रखिए ! ... इन शब्दों ने मासक्षमरण के तपस्वीओ की आत्मा को जगा दी ! और वे तपस्वीगरण केवली मुनि से क्षमा याचना करने लगे । अपने क्रोध के अपराध को खमाने लगे ।.... वे भी पश्चाताप की धारा में चढे और अन्त में उन्हें भी केवलज्ञान प्राप्त हुआ । वे भी केवली बने ! आखिर क्षमा-समता के बिना कोई विकल्प ही नहीं है । अन्त में तो क्षमा की,समता की ही दिशा पकडनी पडेगी । देरी से बाजी बिगाडकर पकडने की अपेक्षा क्यों न आज ही पहले से समता-क्षमा की दिशा पकडी जाय । कीचड में पैर खराब करने के बाद पैर धोने की अपेक्षा पहले ही पैर धोने से थोडे पानी से काम हो जाएगा। थोडे समय में पैर धो सकेंगे। फिर ज्यादा तकलीफ पडेगी।

क्रोधी निर्दय–क्रूर बनता जाता है—

जिस तरह एक व्यसनी मनुष्य एक दिन शराब पीने के बाद थोडी–थोडी प्रतिदिन पीने से पीने की आदत बनाता है, उसी तरह क्रोधादि कषाय भी बार–बार करने की आदत गिर जाती है । फिर मनुष्य क्रोध का भी व्यसनी बन जाता है । स्वभाव में ऐसा चिडचिडापन आ जाता है कि वह सीधी–सादी बात भी क्रोध की अदा से करेगा । सामान्य बात भी क्रोध के ढंग से करता है। क्योंकि मानसिक वृत्ति में तामसिकता का प्रमाण ज्यादा बढाया है । वह ज्यादा तेज मिर्चि, ज्यादा तेज कडक चाय और अत्यन्त जलद–तेज उष्ण पदार्थों का ही सेवन करता है । इससे भी मानसिक वृत्ति तामसिक बन जाती है । इससे उसके शब्दों में वेधकता

आती है। तलवार के जैसी धारदार भाषा बोलने लगता है। जिसके सुनते ही सुनने वाले के कलेजे के दो टुकडे हो जाय ! जिस तरह बार-बार शराब पीने वाला शराबी नशे में ही रहता है। बोले तो भी नशे में ही, और चले तो भी लडखडाता हुआ नशे में ही चलता है। उसी तरह तीव्र क्रोधी…क्रोध के आवेश में ही लम्बे समय तक रहता है, यद्यपि क्रोध करना बंद भी हो गया!… जिसके प्रति क्रोध करता था वह मनुष्य चला भी गया तो भी यह तो मन ही मन विचारों के प्रवाह में क्रोध की मात्रा को बढाता ही रहता है। जब ऐसी अवस्था में क्रोध की लेश्या अत्यन्त क्रूर बन जाती है तो वह क्रूर कृष्ण लेश्या मरने-मारने के विचारों पर आ जाता है। क्रोध की अन्ध दशा में कुछ भी पता नहीं चलता। विचार-शक्ति और बुद्धि, तथा विवेक शक्ति कुण्ठित हो जाती है। परिणाम स्वरूप हाथ में जो भी शस्त्रादि आया उससे प्रहार करके, वार करके सामने वाले को मार भी डालता है। खून कर देता है। यही क्रोध की अन्तिम अवस्था है। शराबी का नशा उतरने के बाद उसे कुछ अच्छे-बूरे का विचार आता है। ठिक उसी तरह क्रोधी का आवेश शान्त होने के बाद कभी उसे अपने किये हुए कुकार्य पर बोले हुए अशुभ शब्दों पर विचार आता होगा ! फिर अफसोस होता होगा कि अरे… रे… मैंने यह क्या कर दिया ? अरे… रे…यह क्या कर डाला ! कई बार क्रोधी-क्रोध में बेटे को उपर से फैंक देता है। गुस्से-गुस्से में पत्नी को जला देता है, किसी का खून भी कर बैठता है। कभी कभी सगे संबंधी, व्यापार में भी अपने…

ग्राहक ग्रादि को कहीं भी… ऐसा खराब काम वह कर बैठता है। और परिणाम स्वरूप जिन्दगी भर उसे दुःखी होना पडता है। क्रोध तो १-२ मिनिट, १-२ घंटे या १-२ दिन का होता है… और ऐसे ग्रावेश में बिना विचारे कुछ कर बैठने के बाद जब पकडा जाता है, या तो खून के ग्रारोपसर पकडा जाय, या-ऐसे कोई ग्रपराध में पकडा जाने के बाद वर्षों की सजा, जिन्दगी भर की काले पानी की सजा होती है तब सिर पीट-पीट कर रोते रहना पडता है। इसलिए पहले ही समझकर चलें तो ही लाभ है। क्रोध ज्यादा करते ही रहने की ग्रादत बनाना सर्वथा हितावह नही है। नितान्त नुकशान कारक है। क्रोध करते रहने से स्वभाव में निर्दयता, क्रूरता ग्राती है। मानव मन निर्दय-क्रूर बनता जाता है। फिर वह घातक हिंसक बनता जाता है।

क्रोध पर जमाने की असर—

ग्राज से सौ साल पहले, कोई तो ५० साल पहले की बात करते हैं कि हमारे बाप-दादा के समय में लोग इतने सरल-ग्रौर शान्त प्रकृति के थे कि… थोडी-सी, छोटी-सी भूल में भी क्षमा मांगते थे। उसके पैर पडकर-हाथ जोडकर माफी मांग लेते थे… ग्ररे! भाई भूल हो गई ग्रापको मेरा पैर लग गया! इस तरह ज्यादा सभ्यता का काल था। ज्यादा समता-शांति का काल था! लोग पाप भीरू ग्रौर धर्म श्रद्धालु ग्रधिक थे। पाप से डरते थे। ग्राहारादि भी इतने ज्यादा तामसिक नहीं थे। सात्विकता ज्यादा थी। ग्रत: सत्वशाली मनुष्य खान-पान ग्रादि में भी सात्विकता का ध्यान रखता था। ग्रौर ग्राज जमाना बदल गया है। जीवन

में से, खानपान में से सात्विकता नष्ट होती जा रही है। सिनेमा, नाटक, टी. वी आदि ने आपके दिमाग पर कामुकता, और तामसिकता की पक्कड जमा दी है। परिणाम स्वरूप उपर से दिखावा इतना ज्यादा बढा दिया है कि मानों आज के राजा तो यही है। परन्तु कपडों के भपके में, कृत्रिम सौंदर्य प्रसाधनों आदि से क्या मनुष्य में समता आदि के गुण थोडी ही आएंगे? भूतकाल का वह जमाना बीत गया जबकि गुणों को अग्रिमता दी जाती थी, गुण देखे जाते थे। और आज गुण नहीं देखे जाते चमडी का रूप पैसा, और भभका—ठाटबाट देखा जाता है। बस सबकुछ पैसे की मेजर-पट्टी से मापा जाता है। अत: आज के इस काल में भले ही आप कहीए मनुष्य ज्यादा सुखी बना है। ज्यादा पैसा बढा है। विज्ञान-युग की साधन सामग्रीयाँ खूब बढी है। सुख के साधन आज अत्यधिक बढे है! लेकिन क्षमा कीजिए सब कुछ बढने के बावजूद भी मैं कहता हुं कि "सहनशीलता का प्रमाण घटा है। गुणों का प्रमाण घटा है। सात्विकता तो समाप्तिके किनारे पर है। क्षमादि भाव कम हुए हैं। पाप भीरूता, धर्म श्रद्धा का स्तर काफी नीचे आ गया है। अपराध बढे है। तामसिकता आज ज्यादा बढी है। इस तरह अनेक दूषण ही बढे हैं। कौन सा अच्छा काल आया है। आज सामान्य बात में लोग खून करते है। दस पंसे के लिए खून। दो शब्द सहन नहीं हुए कि आत्म हत्या! इस तरह चारों तरफ से विचार करने पर भी इस जमाने में गुणों की अपेक्षा दोष ही ज्यादा दिखाई देते हैं। आज क्रोध कषाय भी लोगों में काफी ज्यादा दिखाई देता है—समता—क्षमा तो नामशेष रह गई है।

क्रोधादि चारों कषायों के ४ भेद और उनका फल-स्वरुप—

	अनन्तानुबंधी	अप्रत्याख्यानीय	प्रत्याख्यानीय	संज्वलन
काल मर्यादा →	आजीवन	१ वर्ष	४ मास	१५ दिन
गति बंध →	नरक गति बंधक	तिर्यंच गति बंधक	मनुष्य गति बंधक	देव गति बंधक
गुण घात →	सम्यक्त्वगुणनाशक	देशविरतिगुणरोधक	सर्वविरतीगुणरोधक	वीतरागतागुणरो०
प्रतिक्रमण →	×	संवत्सरी प्रतिक्रमण	चातुर्मासिकप्रतिक्र.	पाक्षिक प्रतिक्रमण
क्रोध की उपमा	पर्वत की रेखा	जमीन की रेखा	रेती में रेखा	पानी में रेखा

योगशास्त्र के श्लोकों में और इस कोष्ठक से क्रोधादि कषायों के मुख्य ४ भेदों का स्वरुप बताया गया है। क्रोध-मान-माया-लोभ इन चारों कषायों के चार-चार भेद इस तरह १६ भेद होते हैं। (१) अनन्तानुबंधी, (२) अप्रत्याख्यानीय, (३) प्रत्याख्यानीय, (४) संज्वलन। यहां क्रोध का विषय चल रहा है इसलिए मुख्य रुप से क्रोध के विषय में विचार करें। (१)

क्रोध के ४ भेदों का स्वरुप—

स्यु: कषाया: क्रोध-मान-माया-लोभा: शरीरीणाम् ।
चतुर्विधास्ते प्रत्येकं, भेदै: संज्वलनादिभि: ।।
पक्षं संज्वलन: प्रत्याख्यानो मासचतुष्टयम् ।
अप्रत्याख्यानको वर्षं, जन्मानन्तानुबन्धक: ।।
वीतराग–यति–श्राद्ध–सम्यग् दृष्टित्व घातका: ।
ते देवत्व—मनुष्यत्व—तिर्यक्त्व—नरकप्रदा: ।।

अनन्तानुबंधी क्रोध—

जिसका जल्दी अन्त नही है ऐसा क्रोध अनन्तानुबंधी क्रोध कहलाता है यह आजीवन रहता है। और आगे जन्म जन्मान्तरों में भी रहता है। अनन्तानुबंधी कर्म बांधने वाला कषाय मिथ्यात्व सहित होने के कारण अनन्त भवों तक परंपरा चलती है। किसी भी निमित्त से एक बार क्रोध कषाय उत्पन्न हुआ और फिर मिटा ही नहीं वह जन्म भर रहा....और वैर की परंपरा खडी करके आगामी जन्मों में भी साथ में आया तो वह अनन्तानुबंधी क्रोध कषाय है। इसके फलस्वरुप नरक गति मिलती है। यह सम्यक्त्व के गुण का घातक है। रोधक है। जब तक यह अन्तानुबंधी क्रोध आत्मा में सत्ता में पडा होगा वहां तक देव-गुरु-धर्म-तत्व पर श्रद्धा नहीं होगी। सम्यक्त्व नहीं होगा। ऐसे कषाय के लिए कोई प्रतिक्रमण नहीं है। ऐसा कषाई आदमी कभी क्षमा नहीं मांगता। उपमा के लिए दृष्टान्त चित्र में देखिए पर्वत के बीच तिराड पड जाए। किसी भूकंपवश ... पहाड के बीच तिराड रेखा कभी भी हजारों साल के बाद भी वापिस मिलती नहीं है। ऐसा यह अनन्तानुबंधी क्रोध कषाय है जो

जन्म भर में क्षमा नहीं माँगता। एक होके नहीं मिलते। और आगे के जन्मों में भी वैर की परंपरा चलती है। जैसे कमठ, अग्निशर्मा का क्रोध ऐसा था।

(२) **अप्रत्याख्यानीय**— १ वर्ष के काल तक टिकने वाले क्रोध को अप्रत्याख्यानीय क्रोध कहते हैं। यह भी अच्छा नहीं है। फिर भी १ वर्ष की अवधि है। इसके नाश के लिए– १ वर्ष के अन्त में - सांवत्सरिक प्रतिक्रमण रखा है। संवत्सर–अर्थात् वर्ष। वर्ष के अन्त में भी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करके परस्पर क्षमापना (मिच्छामिदुक्कडं) कर के इस कषाय की समाप्ति करते हैं। और १ वर्ष में भी न करें तो यह कषाय तिर्यंच पशु–पक्षी की गति में ले जाता है। यह क्रोध–देश विरतिपने को- श्रावकपने को आते रोकता है। इसे जमीन की तड की उपमा दी गई है। हल चलाने से जमीन जो फट जाती है वह कब एक होगी? वर्ष में १ बार भी जब बारिश आएगी तब पानी से एक हो जाएगी। अर्थात् यह कषाय साल में एक बार तो शान्त हो ही जाता है।

(३) **प्रत्याख्यानीय**— ४ महिने के काल तक टिकने वाला क्रोध कषाय प्रत्याख्यानीय कहलाता है। जैसे बच्चे समुद्री किनारे या और कहीं रेती में अंगुली से रेखा खिंचकर कुछ चित्रादि बनाकर खेलते हैं। वह रेखा चाहे कितनी भी गहरी क्यों न हो फिर भी समुद्र की एक लहर आते ही उसे मिटा देगी। हवा का झोका रेती को उडा ले जाएगा और रेती की भेदक रेखा मिट जाएगी! वैसा ही यह क्रोध है। यह ४ महिने की अवधि का है। इसको

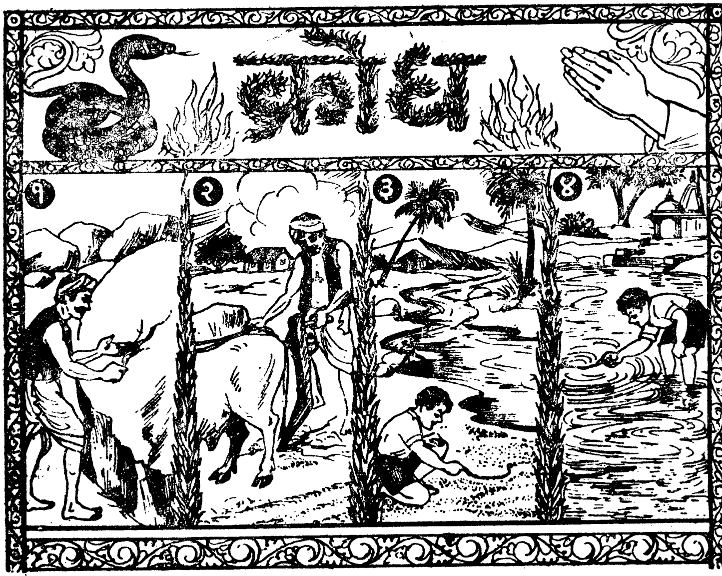

मिटाने के लिए चौमास —चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की व्यवस्था है । और यह भी न करें तो यह क्रोध आगे के क्रोध के घर में चला जाएगा । यहां तक मनुष्य गति सुलभ है । यह कषाय चारित्र गुण का घातक है । सर्वविरति—साधुपने को आते रोकता है।आत्मा छट्ठे गुणस्थानक पर नहीं जा सकती ।

(४) **संज्वलन क्रोध कषाय**— सबसे कम काल अवधि वाला यह अंतिम चौथा भेद है । उत्कृष्ट काल अवधि इसकी सिर्फ १५ दिन की है । और कम से कम तो क्षण मात्र की है । जैसे कोई लकडी से पानी में रेखा खिंचते हुए चित्र बनाए तो वह कैसे बने ? इधर

खिचते जाइए और उधर पानी वापिस मिलता जाएगा ! वैसा यह संज्वलन कषाय है । एक क्षण में क्रोध आया सही... लेकिन १–२ मिनिट में क्षमा मांगकर पश्चाताप से शुद्धि कर ली । प्रसन्नचंद्र राजर्षी को क्रोध आया सही लेकिन.... १ क्षण में बाजी पलट दी ... तो नरक में जाने से बच गए । और कर्म खपाते हुए केवल–ज्ञान तक पहुंच गए ! फिर भी लम्बी काल अवधि १५ दिन की रखी है । पाक्षिक (१५) दिन के अन्त में भी प्रतिक्रमण करने से क्षमापना से यह कषाय हट जाता है । यहां तक देवगति मिलती है । यह थोडा पतला भी कषाय वीतरागता–यथाख्यात चारित्र प्राप्ति में बाधक बनता है । —

क्रोध को सांप की उपमा दी है— चित्र में उपर सांप का चित्र बनाया गया है क्रोध को सांप की उपमा दी है । सांप अपनी फेण चढाकर गुस्से से काटता है । उसमें विष है । विष की असर से मनुष्य मर जाता है । सोचिए ! सांप के शरीर में तो सिर्फ दांत की दाढा के नीचे ही विष की थैली है।यह जानकर सपेरा वाले विष की थैली निकाल कर फेंक देते हैं । फिर भले ही सांप को गले में लेकर फिरो कोई हरकत नहीं उसी तरह मनुष्य में देखिए। मनुष्य के शरीर में विष है ? नहीं । कोई विष की थैली हैं? नहीं। फिर भी आपने सुना होगा कि अफ्रीका में एक लडका सांप को काटता है और सांप मर जाता है । बडे आश्चर्य की बात है । सांप काटे और लडका मरे तो आश्चर्य नही है । परन्तु लडका काटे और सांप मर जाय तो कितना बडा आश्चर्य ! मनुष्य के शरीर में क्रोध ही

विष है । सांप काटे तो मनुष्य मरे परन्तु मनुष्य सिर्फ दो शब्द बोल दे तो भी सामने वाला मर जाता है । ऐसे अनेक प्रसंग संसार में बने है । क्रोध विषरुप है। क्रोध के आवेश में निकलते शब्द विषवत् असर पहुंचाते है । तीव्र क्रोध कषाय की गति के कारण नरक में न भी जावे तो हिंसक पशु-पक्षी-सांप-सिंहादि के जन्म होते है ।

क्रोध कषायोत्पत्ति के निमित्त कारण— सारा संसार सेंकडों निमित्तों से भरा पडा है । कदम-कदम पर क्रोध हो सके ऐसे निमित्त भरे पडे हैं । किसी को भी जब भी क्रोध आता है तब कुछ न कुछ निमित्त कारण बनता है । और बिना निमित्त के तो मानसिक क्रोध, वैचारिक क्रोध- स्वप्न क्रोध रहता है । कईयों का बडप्पन में मान-सत्ता के क्षेत्र में अपमान होने से क्रोध भडकता है । कईयों को काम-वासना की अतृप्त इच्छा के कारण क्रोध होता है । कई लोग अपनी धारणानुसार इच्छानुसार कार्य न होने पर क्रोध करते हैं । गाली देने आदि के कारण भी क्रोध जगता है । अनिष्ट-अनिच्छनीय-अप्रिय संयोग-वियोग के निमित्त क्रोध जागृत होता है । मानसिक अस्वस्थता के कारण क्रोध भडकता है। शारीरिक अशक्त और मानसिक अस्वस्थ मनुष्यों में क्रोध जल्दी भडकता है । बार-बार-बात-बात में क्रोध आ जाता है । फिर स्वभाव चिडचिडा हो जाता है । ऐसा चिडचिडापनवाला स्वभाव भी बार-बार क्रोध को भडकाता है । मानसिक तनाव की व्यग्र स्थिति में भी क्रोध की संभावना जल्दी बढती है । महाभारत में कहा है— "क्रोधात् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिभ्रमः ।

स्मृति विभ्रमात् बुद्धिनाशः. बुद्धिनाशात् प्रणश्यति'' क्रोध से संमोह, संमोह से स्मृति का भ्रम, और इससे बुद्धि का नाश भी होता है ।

क्रोध कषाय को कैसे जीतें ?—

समता की एक मात्र साधना ही क्रोध को जीतने में समर्थ है । **''उवसमेण हणे कोहं''** क्षमा के (उपशान्त) समभाव से क्रोध जीता जा सकता है । दमदंत मुनि जंगल में काउस्सग्ग ध्यान में खडे थे·· कौरवौं ने आकर गाली दी-पत्थर-ढेले मारे ·· प्रहार किया और पांडवोने स्तुति की····वंदना की फिर भी मुनि शान्त रहे।आत्मा को समझा लिया।हे जीव! इस गाली से तेरा कुछ भी बिगडने वाला नहीं है । देता है देने दो–हमें तो ऐसा सोचना चाहिए कि—

ददतुददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो,वयमिह तदभावाद्गालि दानेऽसर्थाः
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं,न तु शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति

आपको जितनी गाली देनी हो उतनी दीजिए··· दीजिए ! क्योंकि आप गाली वाले हो, गाली देने में समर्थ हो, मैं तो गाली देने में असमर्थ हूं । हां ठीक कहा है··· जिसके पास जो होता है वही वह देता है । न हो तो कहां से दे ? खरगोश के पास सिंग नहीं है तो कहां से दे? इस तरह गाली सुनकर मन को समझा लेना चहिए! सहनशीलता बढानी चाहिए । जगत में सभी जीव कर्माधीन है । कर्मग्रस्त है । उसके गाली देने से उसे ही कर्म बंधेगे । मैं तो गधा बन नहीं सकता । अरे कोई श्राप भी दे तो भी समता रखें !

—हम सब कषायों से मुक्त हो ऐसी शुभेच्छा—

卐 ।। कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव ।। 卐

श्री अजितनाथ जैन धर्मशाला-मालदास स्ट्रीट-उदयपुर में नवयुवकों
के लिए श्री संघ की तरफ से आयोजित

—चातुर्मासिक २० रविवारीय—

श्री महावीर जैन शिक्षण शिविर

के अंतर्गत

प. पू. मुनिराज श्री अरूणविजयजी
महाराज के सार्वजनिक व्याख्यानों की
रविवारीय सचित्र व्याख्यानमाला

पाप की सजा भारी

–की प्रस्तुत नौंवी प्रवचन पुस्तिका–

प पू. तपस्वीनि साध्वीजी श्री सुदर्शनाश्रीजी महाराज के समवसरण तप की आराधना के उपलक्ष में

एवं

सौभाग्यवती पवनकुमारी मनोहर सिंहजी गन्ना के ९ उपवास की तपश्चर्या के उपलक्ष में

मडगांव-जालोर (मारवाड) के निवाशी

ठाकूर श्रीमान पीरचंदजी सूरजमलजी कोठारी

के उदार सौजन्य एवं शुभ कामनाओं से
श्री उदयपुर जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक
श्री संघ ने

—卐 छपवाकर प्रसिद्ध की है। 卐—

मुद्रक : ऋषभ मुद्रणालय, धानमण्डी, उदयपुर (राज०)